ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 183-184

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

स्त्री विमर्श के विविध आयाम

आरजू सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, पंडित दीन दयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, पलही पट्टी – वाराणसी (उ0प्र0) भारत

Received-16.12.2023, Revised-22.12.2023, Accepted-26.12.2023 E-mail: Singharju007@gmail.com

सारांशः ***चाहे हिन्दू नारी की गौरव गाथा से आकाश गूंज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल कांप उठा हो, परंतु उसके लिए 'न सावन सूखे न भादो हरे' की कहावत ही चरितार्थ होती रही है। उसे अपने हिमालय को लजा देने वाले उत्कर्ष तथा पाताल समुद्र तल की गहराई से स्पर्धा करने वाले अपकर्ष, दोनों का इतिहास आंसुओं से लिखना पड़ा है और सम्भव है भविष्य में भी लिखना पड़े। प्राचीन से प्राचीनतम काल में जब उसे त्याग, संयम तथा आत्मदान की आग में अपना सारा व्यक्तित्व, सारी सजीवता और मनुष्योचित, स्वभावों चित इच्छाएं तिल – तिल गलाकर उन्हें कठोर आदर्श के सांचे में ढालकर एक देवता की मूर्ति गढ़ डाली तब भी क्या संसार विस्मित हुआ, मनुष्यता कातर हुई।'***

कुंजीभूत शब्द– गौरव गाथा, पाताल, चरितार्थ, उत्कर्ष, गहराई, स्पर्धा, अपकर्ष, भविष्य, प्राचीनतम काल, त्याग, संयम, आत्मदान।

सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि स्त्री–विमर्श है क्या? जहां तक मेरा मानना है कि स्त्री विमर्श पुरुषों के खिलाफ कोई आंदोलन या लड़ाई न होकर एक बहस है। स्त्रियों के अधिकार, अस्मिता, शिक्षा, मूल्य आदि के सम्बन्ध में। डॉ. हरदेव बाहरी ने 'हिन्दी पर्याय कोश' में विमर्श शब्द के कई अर्थ दिए–तबादला–ए–ख्याल, परामर्श, मशविरा, राय, बात, विचार–विनिमय, विचार–विमर्श, सोच–विचार आदि। हम अलग ढंग से भी परिभाषित कर सकते हैं, जैसे स्त्री विमर्श स्त्रियों के ऊपर सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से थोपी गई मान्यताओं और रूढ़ियों के विरोध में उभरा वैचारिक आंदोलन है। नारी समाज का अभिन्न अंग है। जब से सृष्टि में नर और नारी का सर्जन हुआ है, तब से वर्तमान आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के परिवेश में नारी विमर्श एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना हुआ है। समय परिवर्तन के साथ–साथ उसमें भी परिवर्तन आता रहा है। भारतीय स्मेज में नारी को शक्ति का रूप माना गया है। मां, शक्ति के रूप में, मां लक्ष्मी स्वरूप को मन्दिर में पूजा जाता है। वैदिक युग के बाद समाज में स्त्री का स्थान दिन प्रतिदिन निम्न स्तर ही होता गया है। समाज में स्त्री का स्थान असमानतापूर्ण है। डेढ़ सौ साल पहले अमरीका की मजदूर स्त्रियों के संघर्ष से आरम्भित इस आंदोलन ने स्त्री समुदाय के संघर्ष को शक्ति और ऊर्जा दी थी।

स्त्री–विमर्श की चर्चा के उपरांत स्त्री विमर्श के विविध आयाम को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक बिंदुओं को केंद्र में रखकर देखा जा सकता है। सामाजिक बिंदु को केंद्र में रखकर सर्वप्रथम परिवार से ही इस विमर्श को देख सकते हैं। एक घर में बालक और बालिका के जन्म से ही प्रारम्भ होता है। बालक के जन्म पर हम पारम्परिक गीत गाते हैं, वाद्य–यन्त्र बजवाते हैं, मिष्ठान वितरण करवाते हैं तथा खुशियां मनाते हैं इत्यादि । यह अलग बात है कि भारतीय समाज में ऐसी मान्यता है कि पितृ ऋण से उ ऋण होने के लिए पुत्र की प्राप्ति जरूरी है। ठीक इसके विपरीत पुत्री के जन्म पर ऐसा देखने को नहीं मिलता है। अब कुछ परिवर्तन देखने को मिल रहा है। इसी के साथ – साथ परवरिश से लेकर, शिक्षा व्यवस्था, रहन सहन, वेशभूषा में भी हम इस विभेद को परिलक्षित कर सकते हैं। इतिहास प्रमाण है इस बात का कि" एक नारी का अस्तित्व युगों – युगों से संघर्ष और समर्पण के दो पाटों से होकर गुजर रहा है।"[2]

यहीं पर स्त्री स्वातंर्त्य का प्रश्न अभी भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। एक भारतीय नारी अभी भी पुरुष के बनाए तमाम अनैतिक और अशोभनीय बंधनों को तोड़कर स्वतंत्रता की एक पृथक परिभाषा गढ़ने को आतुर दिखाई दे रही है। आज नारीवादी चिंतन की मुख्य चिंता है, स्त्री को दोयम दर्जे की स्थिति और उसकी जिम्मेदार संरचनाएं। तात्पर्य यह है कि स्त्री अस्मिता का प्रश्न आज के विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। आज की दुनिया में शायद ही कोई ऐसा समाज हो जहां स्त्री पुरुष में पूर्ण समानता हो, उन्हें अवसर की बराबरी, इज्जत व सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संरचना में बराबरी के अधिकार प्राप्त हों।[3]

आज की स्त्री परम्परा और समाज के द्वंद्व के बीच अपनी अस्मिता और अस्तित्व को लेकर निरन्तर संघर्ष कर रही है। यही वजह है कि वह पारम्परिक मान्यताओं को अपने मार्ग में बांधा मानने लगती है। स्त्री को देखने समझने की दृष्टि बार बार उसे कटघरे में लाकर खड़ा कर देती है। स्त्री के अस्तित्व का ताना – बाना पितृसत्तात्मक समाज का अपना बनाया हुआ होता है। पितृसत्ता का सीधा सा बनता है – पुरुष वर्चस्व। पितृसत्ता की बहुत महत्वपूर्ण परिभाषा गार्डा लर्नर ने दी है– "पितृ सत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएं ऐसी सत्ता तक पहुंचने से वंचित रहती हैं।"[4]

इसी बात कि पुष्टि डॉ. राजेंद्र यादव ने अपनी पुस्तक 'आदमी की निगाह में औरत' में दो टूक लिखा है कि – "हम पुरुष को उसकी संपूर्णता में देखते हैं लेकिन नारी को हम सम्पूर्णता में नहीं देख पाते । पुरुष शासित तंत्र के बनाए गए मिथक को तोड़कर एक स्त्री आजाद होना चाहती है।"[5]

उन्नीसवीं सदी से लेकर अब तक भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया जा रहा है। 19 वीं सदी सामाजिक माहौल स्त्री की स्थिति और प्रचलित मान्यताओं पर प्रश्न चिन्हलगाता है। इस सदी में स्त्री विमर्श पर दो स्वर उठे, जिनमें से 1882 में मराठी की ताराबाई शिंदे ने स्त्री पुरुष पर तुलना लिखी। दुनिया भर की स्त्री जाति का वास्तविक स्थिति पर विचार विमर्श करने का आह्वान इसमें है। स्त्री पुरुष की समानता पर बल देते हुए उन्होंने चेतावनी दी कि स्त्री को आप दरकिनार नहीं रख

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- IV, Issues-30, YEAR- Oct.-Dec.-2023

सकते। ताराबाई ने लिंग भेद के आधार पर स्त्री पुरुष के अधिकारों में फर्क करने और दोहरे मापदंड बरतने के खिलाफ आवाज उठाई। वह बार बार पूछती हैं कि पुरुष अपने आप को स्त्रियों से इतना भिन्न क्यों समझता है? स्त्री की तुलना में वह खुद को इतना महान और बुद्धिमान क्यों मानता है। अगर वे इतने ही महान और हीरो थे तो अंग्रेजों के गुलाम कैसे बन गए।[6] ताराबाई शिंदे कि तरह ही महादेवी वर्मा भी नारी के अधिकारों के लिए लड़ती रही हैं। उन्होंने नारी शिक्षा की जरूरत पर जोर से आवाज बुलन्द की और खुद इस क्षेत्र में कार्यरत रहीं। उन्होंने गांधी जी की प्रेरणा से संस्थापित प्रयाग महिला विद्यापीठ में रहते हुए अशिक्षित जनसमूह में शिक्षा की ज्योति फैलाई। शिक्षा प्रचार के संदर्भ में उन्होंने सुधारकों की अदूरदर्शिता और संकुचित दृष्टि पर खुलकर वार किया। वे लिखती हैं "जब स्त्रियों को सुशिक्षित बनाने के लिए चर्चा चली तो बहुत से व्यक्ति अगुआ बनने को दौड़ पड़े थे। यह कहना तो कठिन है इस प्रयत्न में कितना अंश अपनी ख्याति की इच्छा का था और कितना केवल स्त्रियों के प्रति सहानुभूति का।"[7] आज महिलाओं को आरक्षण तो प्राप्त हो गया है। वह गांव की मुखिया, सरपंच और ग्राम्याध्यक्ष भी बन गई हैं, परंतु वास्तव में उसके हाथ में सत्ता अधिकार आएं हैं क्या? पुरुष के वर्चस्व, उसकी दंभी वृत्ति और उसकी शरीर की ताकत से क्या वह मुकाबला कर पा रही है ? आज समाज को ऐसी नारियों की आवश्यकता है, जो अपनी अंतः शक्ति का प्रयोग पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने के लिए करे न कि पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करती हुई परिवार की उपेक्षा करे। आधुनिक शिक्षित युवक – युवतियां शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् नौकरी करना चाहते हैं। उनका उद्देश्य स्वयं को स्थापित करना होता है। इसके साथ ही साथ उनको ऐसा जीवनसाथी चाहिए जो उनकी भावनाओं को समझे और उनके व्यक्तित्व का सम्मान करे। लेकिन दुर्भाग्य से उसके साथ ठीक इसके विपरीत घटित होता है।

इसी के साथ स्त्री–विमर्श का मुख्य पहलू भाषा के संदर्भ में भी है। भाषा के पीछे भी पितृक चरित्र होता है। 'नारी' शब्द ऐतिहासिक आवश्यकता के लिए निर्मित रूपक है, जिसका कहीं भी संकेत नहीं है। सवीपवॉक को नारी शब्द से आपत्ति है। वे इस नाम तक को मिटाने की राय देती हैं। उनके अनुसार इस नाम में पुरुष ने दमन, अन्याय की सिद्धांतिकी निर्मित की है। जहां पुरुषों कि भाषा है, पुरुषों के अनुभव है, पुरुषों का मुहावरा है, जो कि स्त्री विरोधी ही है। क्या संस्कृत, हिन्दी पितृक भाषाई काल नहीं कहे जा सकते? भाषा की दुनिया में ये पुलिंगवादी संरचनाएं क्या पितृक नहीं हैं, जिसे आज स्त्री को है तोड़ना है। यह भाषा में पुरुष वर्चस्व ही तो है, जिसे स्त्री को, स्त्री लेखिकाओं को इस पुलिंगी भाषा के संरचनावादी मॉडल को ध्वस्त करना है तथा नई भाषा को गढ़ना है। सुधीश पचौरी ने भाषा में पुरुष वर्चस्ववाद को स्पष्ट करते हुए सही टिप्पणी की है कि – "स्त्री केंद्रित चिंतन की निर्णायक विशेषता भाषा में पुरुष वर्चस्ववाद के इस ढांचे को तोड़ने की है।"[8] हम कह सकते हैं कि आज शिक्षित, कामकाजी, अधिकार सजग, बौद्धिक, अर्थ स्वतंत्र पत्नियों ने पुरुषों के लिए अनेक तथाकथित समस्याएं खड़ी कर दी हैं। शिक्षा, राजनीति, खेल, धर्म, फिल्म, सेना, साहित्य, प्रशासन, मीडिया, संविधान और विज्ञान ने महिलाओं के लिए नए क्षितिज खोल दिए हैं। यह पुरुष अनुगामिनी एक दिन निश्चित रूप से सहगामिनी बन जाएंगी। जैसे – जैसे समाज में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया और वह अबला से सबला बनने की ओर अग्रसर हुई वैसे वैसे वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत भी हुई है। स्त्री विमर्श के जरिए प्राचीन और आधुनिक नारी की स्थिति में जो अन्तर नजर आता है, वह ऐसा है जैसे किसी पुरानी किताब पर नया कवर चढ़ा दिया गया हो।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि समाज के उज्ज्वल भविष्य की कामना के लिए हमें स्त्री के प्रति अपना नजरिया व सोच सब बदलने होंगे। उसे भी मान– सम्मान, स्नेह, अपनेपन की आवश्यकता है। वह समाज का अभिन्न अंग है। उसमें भी अपार सामर्थ्य व संभावनाएं हैं, जिससे समाज का विकास ही होगा। हमें सकारात्मक सोच को अपनाते हुए उसके अस्तित्व को स्वीकारना होगा। आज का युग बेशक नारी स्वतंत्रता का युग है, लेकिन हम कटु सत्य को भी नकार नहीं सकते। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि नारी के परम्परागत स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आया। इन सब रूढ़ियों और कुप्रथाओं के बावजूद वह सभी चुनौतियों का सामना करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रही है। आज महिलाएं मानवीय क्रिया–कलापों के सभी क्षेत्रों में नई–नई उपलब्धियां अर्जित कर रही हैं। भारत में पहली महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल जी, लोकसभा की पहली महिला स्पीकर मीरा कुमार, अंतरिक्ष तक पहुंचने वाली कल्पना चावला इत्यादि उदाहरण यह दर्शाते हैं कि महिला को न केवल अपनी शक्ति का अहसास हो गया, बल्कि समाज के अन्य वर्ग भी इस शक्ति का लोहा मानने लगे हैं। शिक्षा के कारण नारी में जागरूकता आई है और अनेक क्षेत्रों में उसका सम्मान बढ़ा है। स्त्री विमर्श के जरिए आशातीत तथा अपेक्षित संभावनाएं प्रकाश में आई हैं तथा उत्तरोत्तर सुधार देखने को मिल रहा है। निश्चित रूप से स्त्री समाज प्रकाश की ओर उन्मुख है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां, पृष्ठ संख्या – 32.
2. संपादक राकेश रेणु, आजकल (बहस में स्त्री), विशेषांक, मार्च 2016.
3. लालसा यादव, स्त्री विमर्श की कहानियां, पृष्ठ संख्या – 17.
4. निवेदिता मेनन, साधना आर्य, जिनी लोकनीता, नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दें, पृष्ठ संख्या – 1, 2.
5. प्रतिभा, प्रबुद्ध मिश्रा, पृष्ठ संख्या– 47.
6. डॉ. के. एम. मालती, स्त्री विमर्शः भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नई – दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 57.
7. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां, लोकभारती प्रकाशन तृतीय संस्करण, 2001, पृष्ठ संख्या –61, 62.
8. सुधीश पचौरी, उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 121.

*****